THE TIMES OF INDIA

Date:20-01-23

Babies & Jobs

Lesson for India from China's population decline is to get many more of its working age groups into work

TOI Editorials

China in 2022 recorded a decline in population by 8. 5 lakh, the first annual decline in six decades. But the last population decline came from famine, this one is a result of both a harsh and short-sighted population control policy and demographic transition from an agrarian society to an industrial one. Global experience, spanning Scandinavia to Singapore, shows that even generous fiscal incentives are unable to reverse a population decline once it's set in.

UN forecast India will be the most populous nation in the world in 2023. It's important that India learns the right lessons from an unprecedented global demographic trend. Total fertility rate (TFR) the world over is crashing. The UN forecast the current global population of about 8 billion will rise to 9. 7 billion by 2050. However, 66% of the increase will come because of momentum arising out of past growth. Therefore, the big challenge ahead is to avoid a situation where a country grows old before it gets rich. China already faces this problem and it's unlikely to catch up with the US in per capita income terms. To illustrate, UN estimates by 2030, China's population in the 19-60 age bracket at a little over 800 million will be about 10% lower than India.

Demographic transition has two important phases. At the first stage, fertility rates fall. This, in turn, leads to the working age population growing faster than the overall population. It represents a potential demographic dividend when there's an opportunity for a big spurt in growth and investment. It's however not preordained. It requires the right mix of policy to make the most of this limited demographic window. Where does India stand?

India's TFR fell to a mere two in 2019-21 period, which is below the replacement rate. At present, World Bank data shows that India's working age population is 68% versus a global average of 65%. Even in the age group up to 14 years, India's share at 26% is a shade above the world average. But the problem is that not enough Indians are working, particularly women. Just 46% of India's potential labour force is in the job market. Indonesia and Vietnam, in contrast, have 68% and 74% respectively in the job market. GoI must take this trend with utmost seriousness – India's future depends on reversing it. There's a real danger of frittering away the demographic dividend.

दैनिक जागरण

Date:20-01-23

जातीय गणना के राजनीतिक प्रभाव

राहुल वर्मा, (लेखक सेंटर फार पालिसी रिसर्च में फेलो हैं)

बिहार सरकार ने सात जनवरी से राज्य में जातीय गणना शुरू कर दी है। उसके इस फैसले ने पूरे देश में एक नई बहस छेड़ी है। यह पहल कई नए राजनीतिक समीकरणों की ओर भी संकेत कर रही है। इसका कारण है कि पिछले कुछ समय से देश के विभिन्न कोनों से जातीय गणना की मांग जोर पकड़ती रही है। आर्थिक आधार पर आरक्षण वाली व्यवस्था यानी ईडब्ल्यूएस कोटे के अस्तित्व में आने के बाद आरक्षण को लेकर खींची गई सुप्रीम कोर्ट की लक्ष्मण रेखा लांघे जाने के बाद जातिगत आधार पर अधिकारों की मांग खासी तेज हुई है। वास्तव में, मोदी सरकार ने 2019 में ईडब्ल्यूएस कोटे में जो 10 प्रतिशत आरक्षण दिया, उससे कई राज्यों में आरक्षण की सीमा निर्धारित 50 प्रतिशत के दायरे के पार चली गई है। इसके चलते कई वर्षों से जातिगत आधार पर विभिन्न अधिकारों की मांग कर रहे वर्ग नए सिरे से मुखर हुए हैं। वहीं अन्य पिछड़ा वर्ग यानी ओबीसी के मसले पर गठित जस्टिस रोहिणी आयोग को लगातार मिलता विस्तार भी कहीं न कहीं यही संकेत करता है कि उसके निष्कर्ष अभी तक किसी परिणति पर नहीं पहुंचे हैं। ऐसे में बिहार सरकार की इस कवायद को कई कड़ियों से जोड़कर देखा जा रहा है। जैसे कि मोदी सरकार द्वारा जनगणना को संभवतः इस कारण टालना कि कहीं उस संदर्भ में जातीय गणना की मांग और तेज न हो जाए।

इस साल कई राज्यों में चुनाव होने हैं और उनकी राजनीति पर इस मुद्दे की छाप दिखाई पड़ेगी। राजनीतिक दलों ने इसकी गंभीरता को समझना भी शुरू कर दिया है। उदाहरण के रूप में कर्नाटक को ही लें, जहां इसी साल विधानसभा चुनाव होने हैं। कर्नाटक सरकार ने गत नवंबर में एक विधेयक पेश किया, जिसके माध्यम से अनुसूचित जातियों (एससी) के आरक्षण की सीमा 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 17 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति (एसटी) के लिए तीन प्रतिशत से बढ़ाकर सात प्रतिशत करने का प्रविधान था। छत्तीसगढ़ में भी एसटी के लिए आरक्षण की सीमा 20 प्रतिशत से बढ़ाकर 32 प्रतिशत और ओबीसी आरक्षण 14 प्रतिशत से बढ़ाकर 27 प्रतिशत करने की तैयारी है। झारखंड तो इस मामले में सबसे आगे निकलता दिख रहा है, जहां एसटी आरक्षण 26 से बढ़ाकर 28 प्रतिशत, ओबीसी आरक्षण 14 से बढ़ाकर 27 प्रतिशत और एससी आरक्षण 10 से बढ़ाकर 12 प्रतिशत करने की योजना है, जो फिलहाल राज्य सरकार, राज्यपाल और अदालती पेच में फंसी हुई है। एससी, एसटी और ओबीसी जैसे वर्गों के लिए आरक्षण की सीमा में फेरबदल के बीच जाट, गुर्जर, मराठा और पाटीदार जैसे तमाम वर्गों को भी उनकी मांगों के अनुरूप समायोजित करने का दबाव बना रहेगा। जाहिर है कि जातीय गणना के बाद कुछ वर्ग अपनी मांग को लेकर दबाव बनाएंगे और उस स्थिति में 50 प्रतिशत की आरक्षण सीमा पर भी नए सिरे से विचार करना होगा।

ऐसा न समझा जाए कि जातीय गणना को लेकर नीतीश कुमार का हृदय सत्ता में साझेदार बदलने के साथ एकाएक परिवर्तित हुआ। जब वह भाजपा के साथ मिलकर सरकार चला रहे थे तो उस समय नेता-प्रतिपक्ष रहे तेजस्वी यादव के साथ वह इस मुद्दे पर एक प्रतिनिधिमंडल लेकर प्रधानमंत्री मोदी से मिले भी थे। हालांकि प्रधानमंत्री मोदी या उनकी सरकार की ओर से इस विषय में कोई आधिकारिक टिप्पणी नहीं आई थी, लेकिन तब नीतीश कुमार ने कहा था कि उन्हें

प्रधानमंत्री से जातीय गणना को लेकर सकारात्मक संकेत मिले हैं। जातीय गणना का मुद्दा पूरी तरह बेमानी नहीं है। देश में 1931 के बाद से जातीय गणना नहीं हुई है और यदि अब होती है तो उससे तमाम वास्तविकताओं का पता चलेगा, क्योंकि वस्तुनिष्ठ आंकड़ों की अपनी उपयोगिता होती है। इससे यह भी पता चलेगा कि अभी तक चले आ रहे जातिगत आरक्षण के लाभ कहां तक पहुंचे हैं? प्रायः यह कहा जाता है कि एससी और ओबीसी आरक्षण का लाभ मुख्य रूप से इन वर्गों की कुछ जातियों तक ही सिमटकर रह गया है और तमाम अन्य जातियों को इसका अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाया है। जातिगत गणना से सामने आनी वाली वास्तविकता से इन विसंगतियों को दूर करने में मदद मिल सकेगी। इससे कोटे के भीतर उसके पुनर्गठन की मांग भी जोर पकड़ सकती है। इसका एक दूसरा पहलू भी है और वह यह कि चूंकि सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियों से लेकर सरकारी शैक्षणिक संस्थानों में अवसर सीमित होते जा रहे हैं तो जातीय गणना के बाद निजी क्षेत्र की कंपनियों और शिक्षण संस्थानों में आरक्षण की गाहे-बगाहे उठने वाली मांग को भी नई धार मिल सकती है।

अभी यह कह पाना मुश्किल है कि जातीय गणना के राजनीतिक निहितार्थ क्या होंगे और इससे किसे लाभ होगा और कौन नुकसान में रहेगा। अभी तक भाजपा ने इस पर एक तरह से मौन साधकर संतुलित रुख ही अपनाया है। वहीं विपक्षी दलों की दृष्टि से देखें तो उन्होंने जातीय गणना के आधार पर एक नया विमर्श खड़ा करने में सफलता हासिल की है, जिससे भाजपा कुछ रक्षात्मक नजर आ रही है। असल में पिछले कुछ वर्षों के दौरान भाजपा ने एससी और ओबीसी की छोटी-छोटी जातियों को लामबंद किया है और सरकार की तमाम कल्याणकारी योजनाओं से ये जातियां प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से लाभान्वित भी हुई हैं। इसके साथ ही पिछले कुछ वर्षों के दौरान ओबीसी वर्गों में ही कुर्मियों, निषाद और राजभर आदि जातियों की प्रतिनिधि पार्टियां भी उभरी हैं और बड़े राजनीतिक दलों ने उनके हिसाब से समीकरण बिठाने शुरू भी कर दिए हैं। ऐसे में जातीय गणना के राजनीतिक प्रभावों का कोई स्पष्ट आकलन करना जल्दबाजी होगा।

स्मरण रहे कि भारत ने विकसित राष्ट्र बनने का जो स्वप्न देखा है, वह वंचित वर्गों के सशक्तीकरण के बिना साकार नहीं हो सकता है। जाति अभी भी हमारे सामाजिक-आर्थिक ढांचे की एक अहम कड़ी है। समय के साथ जातियों के तानेबाने भी बदले हैं। उन्हें पर्याप्त रूप से समझे बिना हम उस सामाजिक अनुबंध की आधारशिला रखकर उसे पर्याप्त रूप से सशक्त नहीं बना पाएंगे, जो भारत को विकसित बनाने के लिए आवश्यक है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:20-01-23

प्रवासी मतदाता और मशीन

संपादकीय

भारतीय निर्वाचन आयोग द्वारा इस सप्ताह के आरंभ में आयोजित सर्वदलीय बैठक में एक रिमोट (दूर से काम करने वाली) मतदान मशीन का प्रदर्शन किया जाना था जो प्रवासी कामगारों तथा दूरदराज रहने वाले अन्य लोगों के मतदान में काम आ सकती थी। विभिन्न विपक्षी दलों के कड़े प्रतिवाद के बाद प्रदर्शन नहीं किया गया। यह मशीन तब सामने आई

जब निर्वाचन आयोग ने कुछ वर्षों तक इस समस्या पर विचार किया कि प्रवासियों के मतदान की समस्या को कैसे दूर किया जा सकता है? गत वर्ष के अंत में आयोग ने संकेत दिया था कि उसने दूर से इलेक्ट्रॉनिक मशीन के माध्यम से मतदान कराने पर काम किया है। इसके लिए एक नमूना मशीन तैयार की गई। निर्वाचन आयोग का कहना है कि ऐसा करने से प्रवासियों के मतदान के लिए अपने गृह जिले जाने की समस्या को हल किया जा सकेगा तथा यह सुनिश्चित हो सकेगा कि वे सुदूर किसी इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के जरिये मतदान कर सकें। समुचित विचार-विमर्श के बाद प्रवासी मतदान को शामिल करने का निर्णय स्वागतयोग्य है और इसे निश्चित तौर पर लागू किया जाना चाहिए। भारत में कुल मतदाताओं में से बहुत कम लोग वास्तव में मतदान करते हैं क्योंकि बड़ी तादाद में मतदाता देश के भीतर ही काम के सिलसिले में या अन्य कारणों से एक स्थान से दूसरे स्थान पर आते जाते रहते हैं। फिलहाल उनके लिए मतदान की कोई उचित व्यवस्था नहीं है। कुछ सर्वेक्षणों से संकेत मिलता है कि बीते कम से कम एक प्रासंगिक चुनाव में 60 फीसदी मौसमी प्रवासी मतदान करने से चूक गए। चूंकि एक समय में देश के भीतर ही 30 से 45 करोड़ लोग यहां से वहां चले गए हैं इसलिए कह सकते हैं कि केवल इसी वजह से बड़ी तादाद में मतदाता मतदान नहीं कर पाते। अर्थव्यवस्था के विकास के साथ ही यह संभव है कि लोगों का आंतरिक प्रवास और बढ़े क्योंकि लोग काम की तलाश में तथा अन्य वजहों से यहां-वहां जाएंगे और मतदान करने से चूक जाएंगे।

ऐसे में इस बाधा से निजात पाना देश के चुनावों को अधिक समावेशी बनाने के लिए अहम है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लंबे समय से यह हो रहा है। उदाहरण के लिए डाक मतदान अमेरिका तथा अन्य देशों के चुनावों में सहज ही इस्तेमाल होता है। भारत में डाक मतदान केवल वरिष्ठ नागरिकों के लिए तथा उन लोगों के लिए है जो चुनाव ड्यूटी कर रहे हैं या अन्य विशेष पदों पर हैं। बहरहाल, यह कहा जा सकता है कि डाक मतपत्र की व्यवस्था होने के बावजूद नई प्रणाली क्यों तलाश की जा रही है। चुनाव आयोग का सोचना यह हो सकता है कि मौजूदा मतदान मशीनों की गति के साथ तकनीक को आसानी से प्रवासी लोगों तक बढ़ाया जा सकता है।

विपक्ष की शिकायत है कि नई व्यवस्था में जटिलता है। यह बात कुछ हद तक सही है। हर रिमोट वोटिंग मशीन में 72 अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों के मतदान दर्ज किए जा सकेंगे। चूंकि हर निर्वाचन क्षेत्र में अनेक प्रत्याशी होते हैं और आम चुनाव में बड़ी तादाद में निर्वाचन क्षेत्र होते हैं इसलिए दिक्कत आ सकती है। ऐसे में निर्वाचन आयोग शायद डाक मतदान का इस्तेमाल कर सकता है जो सहज प्रयोग में लाया जा सकता है। इससे रिमोट मतदान में मशीनों के परीक्षण के लिए और समय मिल जाएगा तथा मतदाताओं और राजनीतिक दलों का भरोसा भी मजबूत होगा। मतदान के तरीके को लेकर मतभेद के चलते प्रवासियों को मतदान में शामिल करने में देर नहीं होनी चाहिए। राजनीतिक दलों को भी केवल विरोध के लिए विरोध नहीं करना चाहिए। अतीत में भी अनेक राजनीतिक दलों ने मशीनों से मतदान का किसी ठोस कारण के बगैर विरोध किया है।

जनसत्ता

Date:20-01-23

भ्रामक ज्ञान

संपादकीय

सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि विकिपीडिया जैसे सूचनात्मक मंचों पर आंख बंद करके भरोसा नहीं कर सकते। उन पर भ्रामक सूचनाएं हो सकती हैं। हालांकि अदालत ने यह बात कानूनी मामलों के मद्देनजर कही और न्यायिक अधिकारियों को ऐसे स्रोतों के उपयोग को लेकर आगाह किया है, पर इसे व्यापक संदर्भ में लेने की जरूरत है। आजकल तथ्यों के लिए विकिपीडिया जैसे मंचों पर अध्येताओं, व्यावसायिक गतिविधियों, शैक्षणिक कार्यक्रमों की निर्भरता लगातार बढ़ती गई है। ऐसे में अगर यह मंच इतना गैर-भरोसेमंद माना जा रहा है, तो यह गंभीर बात है। बहुत सारे विद्यार्थी ऐसे मंचों के सहारे विभिन्न परीक्षाओं की तैयारी करते देखे जाते हैं। मगर इस हकीकत से मुंह नहीं फेरा जा सकता कि विकिपीडिया पर बहुत सारे तथ्य गलत या भ्रामक पाए जाते हैं। इसकी एक वजह स्पष्ट है कि इस मंच ने संपादन की सुविधा खुली छोड़ रखी है। कोई भी वहां जाकर तथ्यों को सुधार सकता है। तथ्यों में उलट-फेर कर सकता है। बहुत पहले इसके कई बड़े उदाहरण देखने को मिल चुके हैं। गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल जैसी शख्सियतों के जीवन से जुड़े अनेक भ्रामक तथ्य उन पर परोसे गए हैं। एक सामान्य अध्येता ऐसे तथ्यों को पकड़ नहीं पाता और उसके मन में कई तरह के दुराग्रह पनप सकते हैं।

खासकर कानूनी मामलों में अगर विकिपीडिया जैसे मंचों पर गलत और भ्रामक तथ्य परोसे जाते हैं और उनका उपयोग किसी मामले को सुलझाने के लिए किया जाता है, तो उससे आने वाले समय के लिए गलत नजीर भी बनती है। इसलिए कानून की अधिकृत पुस्तकें ही इस मामले में प्रामाणिक मानी जानी चाहिए। लेकिन आज जिस तरह युवा पीढ़ी पढ़ाई-लिखाई को लेकर इंटरनेट पर निर्भर होती गई है। वह अपनी हर जिज्ञासा को लेकर तुरंत इंटरनेट खंगालना शुरू कर देती है, खासकर विकिपीडिया जैसे ज्ञानकोश पर आंख मूंद कर भरोसा कर लेती है, उसे खतरनाक नतीजे भी भुगतने पड़ सकते हैं। उस पर भरोसा करके अगर उसने किसी सवाल का गलत जवाब दे दिया, जो अधिकृत पुस्तक में छपे तथ्य से मेल नहीं खाता, तो उसे नुकसान हो सकता है। जिन प्रतियोगी परीक्षाओं में ऋणात्मक मूल्यांकन की व्यवस्था है, उनमें भारी नुकसान झेलना पड़ सकता है। इस तरह सर्वोच्च न्यायालय की ताजा टिप्पणी को गंभीरता से लेने की जरूरत है।

यह सही है कि प्रामाणिक पुस्तकों का विकल्प दूसरा कोई माध्यम नहीं हो सकता, पर पिछले कुछ सालों में जिस तरह इंटरनेट एक सशक्त शिक्षा माध्यम के रूप में उभरा है, उसमें ज्ञान की दुनिया का खासा विस्तार हुआ है। पीडीएफ रूप में और किंडल आदि पर पुस्तकें पढ़ने की सुविधा उपलब्ध है। तमाम शैक्षणिक संस्थान अपनी पाठ्य और सहायक पुस्तकें इंटरनेट पर डालते हैं। ई-पाठशाला जैसी व्यवस्थाएं हैं। मगर इसके समांतर इंटरनेट पर बहुत सारे ऐसे मंच सक्रिय हैं, जो बड़े पाठक समुदाय को आकर्षित करने और लाभ कमाने के लोभ में चल रहे हैं। उन पर परोसी जाने वाली बहुत सारी सामग्री अपुष्ट और अप्रामाणिक है। इसे रोकने की जरूरत लंबे समय से रेखांकित की जा रही है। किसी भी माध्यम से गलत तथ्य और भ्रामक जानकारियां उपलब्ध कराना एक प्रकार का अपराध है। मगर इसके लिए कोई कड़ी कार्रवाई न होने की वजह से ऐसे अधकचरे मंच खूब फल-फूल रहे हैं। सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणी के बाद यह बात रेखांकित हुई है कि ऐसे मंचों, सूचना के स्रोतों पर नजर रखने और उन्हें अनुशासित बनाने के लिए एक नियामक तंत्र होना ही चाहिए।

Date:20-01-23

परिसर के प्रसार से बेहतरी की उम्मीद

रसाल सिंह

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की सिफारिशों के अनुसार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भारत में उच्च शिक्षा के अंतरराष्ट्रीयकरण की दिशा में काम शुरू कर दिया है। अब विदेशी विश्वविद्यालय भारत में अपने परिसर खोल पाएंगे। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भारत में विदेशी संस्थानों की स्थापना और संचालन के लिए 'भारत में विदेशी उच्च शिक्षण संस्थानों के परिसर की स्थापना और संचालन-2023' नामक मसविदा जारी किया है। यह विदेशी विश्वविद्यालयों को प्रवेश प्रक्रिया, शुल्क संरचना, शिक्षकों की नियुक्ति और पारिश्रमिक तय करने और अर्जित आय को स्वदेश भेजने की स्वायत्तता प्रदान करता है। यह भी स्पष्ट है कि ये विश्वविद्यालय पूर्णकालिक कार्यक्रम ही शुरू कर सकेंगे। इस योजना के लिए सिर्फ वही विदेशी संस्थान पात्र हैं, जिन्होंने समग्र या विषयवार वैश्विक रैंकिंग के शीर्ष पांच सौ में अपनी जगह बनाई हो या अपने देश में एक प्रतिष्ठित संस्थान के रूप में मान्य हों।

हालांकि, नियमन में किन मानदंडों को अंतिम रूप से शामिल किया जाएगा, इसकी अधिसूचना सभी हितधारकों की प्रतिक्रिया के बाद इस महीने की समाप्ति तक जारी कर दी जाएगी। यह निर्णय विदेशी संस्थानों को स्थानीय साझेदारों के बिना भी अपने परिसर स्थापित करने हेतु प्रोत्साहित करेगा। इससे भारतीय शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ेगी और छात्रों के भारत छोड़कर विदेश जाने में भी काफी कमी आएगी। भारतीय छात्रों को कम खर्चे पर विदेशी डिग्री मिल पाएगी और भारत अध्ययन और शोध के एक किफायती और आकर्षक केंद्र के रूप में भी स्थापित हो सकेगा।

गौरतलब है कि विदेशी संस्थानों को लाने के ऐसे प्रयास पहले भी हो चुके हैं। पहली बार आर्थिक उदारीकरण के प्रारंभिक चरण में वर्ष 1995 में एक विधेयक लाया गया था। इसी प्रकार 2007 में यूपीए सरकार के समय भी यह विचार चर्चा में आया। मगर ये दोनों प्रयास गठबंधन की विवशताओं और वामदलों के दबाव के कारण सिरे नहीं चढ़ सके।

विदेशी विश्वविद्यालयों के भारत में आने के तमाम कारकों में से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भारत की विशाल छात्र संख्या है। भारतीय छात्रों के बीच अंतरराष्ट्रीय शिक्षा की भारी मांग है। केवल 2022 में ही, करीब साढ़े चार लाख भारतीय छात्र उच्च शिक्षा के लिए विदेश गए। इस तरह हर साल हमारे देश का लगभग अठाईस से तीस अरब अमेरिकी डालर बाहर जा रहा है। अनुमान है कि 2024 तक, अठारह लाख छात्र विदेश जाएंगे और लगभग 6.4 खरब रुपए खर्च करेंगे, जो कि भारत के सकल घरेलू उत्पाद का 2.7 प्रतिशत है। अगर यही रुझान जारी रहा, तो इसका सीधा असर भारतीय वित्तीय और मानव पूंजी पर चिंताजनक दबाव के रूप में पड़ेगा। विदेशों में अध्ययन के लिए गए छात्र अक्सर वहीं काम करने का विकल्प भी चुनते हैं, जो कि प्रतिभा पलायन को बढ़ाता है। आंकड़ों के अनुसार, 2022 के पहले तीन महीनों में, एक लाख तैंतीस हजार एक सौ पैंतीस छात्रों ने अकादमिक गतिविधियों के लिए भारत छोड़ा, जबकि 2020 में करीब दो लाख साठ हजार और 2021 में करीब साढ़े चार लाख भारतीयों ने विदेश में शिक्षा ग्रहण की, जो एक वर्ष में ही 41 फीसद की वृद्धि दर्शाता है।

भारतीय छात्रों के अलावा उपमहाद्वीप और अन्य विकासशील देशों के छात्र भी इन संस्थानों में शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, जो कि बहु-संस्कृतिवाद के साथ-साथ अन्य देशों के साथ भारत को मजबूत संबंध स्थापित करने में मदद करेगा। इस प्रकार, भारतीय अर्थव्यवस्था में विदेशी पूंजी प्रवाह बढ़ेगा। छोटे-मोटे व्यवसाइयों और कारीगरों के लिए बहुत सारे रोजगार के अवसर भी पैदा होंगे। उनके संचालन के लिए बहुत-से लोगों की आवश्यकता होगी। साथ ही, विदेशी विश्वविद्यालय प्रतिभाशाली प्राध्यापकों और शोधकर्ताओं को बेहतर वातावरण में काम करने का अवसर प्रदान करते हुए देश में अनुसंधान और विकास को प्रोत्साहित करेंगे।

भारत में एक हजार से अधिक विश्वविद्यालय और बयालीस हजार से अधिक महाविद्यालय हैं। विश्व के सबसे बड़े उच्च शिक्षा तंत्रों में से एक होने के बावजूद, उच्च शिक्षा में भारत का सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) सिर्फ 27.1 फीसद है, जो कि विश्व में सबसे कम है। ऐसे कई क्षेत्र हैं, जहां वर्तमान भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है। मसलन, हमारा कोई भी विश्वविद्यालय क्यूएस रैंकिंग में शीर्ष सौ में शामिल नहीं है। भारतीय अकादमिक संस्थानों का ध्यान मुख्य रूप से शिक्षण पर होता है। इस कारण अनुसंधान और विकास की अनदेखी कर दी जाती है। कर्मचारियों की कमी, कम संसाधन, छात्रों का बीच में पढ़ाई छोड़ना और संस्थानों का राजनीतिकरण जैसी चुनौतियां भारतीय अकादमिक संस्थाओं को अपना मूल्यवर्द्धन करने से रोकती हैं। इसलिए उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और सर्वोत्तम कार्य-संस्कृति के माध्यम से शैक्षणिक संप्रभुता, न्यूनतम शासन, दूरदर्शी प्रबंधन, बेहतर संकाय, उद्योगों के साथ संबंध और छात्रों की अकादमिक सक्रियता के जरिए भारत को आगे बढ़ाने हेतु विदेशी संस्थानों का स्वागत किया जाना चाहिए।

करिअर परामर्श और रोजगारपरकता एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें भारतीय संस्थान अपने विदेशी समकक्षों से बहुत पीछे हैं। मसलन, हमारा पाठ्यक्रम उन लोगों से चर्चाओं पर आधारित नहीं होता है, जो अंतत: हमारे छात्रों को रोजगार देते हैं या अपने यहां काम पर रखते हैं। वहीं दूसरी ओर, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त शैक्षणिक संस्थान भविष्य की संभावनाओं को समझने के लिए लगातार व्यापार, उद्योग और सरकार के साथ जुड़े रहते हैं। नौकरियों की प्रकृति और कर्मचारियों की मांगों में तेजी से बदलाव हो रहा है, जो सीधे-सीधे शिक्षा प्रदाताओं को यह जिम्मेदारी देता है कि वे इस बदलाव का अनुमान लगाएं और छात्रों को इसके अनुरूप तैयार करें। विदेशी विश्वविद्यालयों ने इस कला में महारत हासिल की है। विदेशी संस्थानों के आने की वजह से हमारे देश में बहु-सांस्कृतिक वातावरण में सीखने के पारिस्थितिक तंत्र का निर्माण होगा, जिसका सीधा प्रभाव छात्रों के दृष्टिकोण पर भी पड़ेगा।

भारत में विदेशी विश्वविद्यालयों के परिसर खुलने से उच्च शिक्षा क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा पैदा होगी। प्रतिभाशाली प्रोफेसर, शोधकर्ताओं और छात्रों को आकर्षित करने हेतु विदेशी विश्वविद्यालय भारत में मौजूद विश्वविद्यालयों के साथ स्वस्थ होड़ करेंगे। उनके साथ उद्योग परियोजनाओं, प्रतिभाशाली छात्रों और शिक्षकों के लिए प्रभावी ढंग से प्रतिस्पर्धा हेतु भारतीय विश्वविद्यालय अपने स्तर में सुधार को प्रेरित होंगे। इसलिए अपेक्षा की जा रही है कि विदेशी विश्वविद्यालय भारतीय छात्रों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच बढ़ाने और भारत की आबादी को मानव संसाधन में परिवर्तित करने में भी सहायता प्रदान करेंगे।

यह सब तभी संभव है, जब भारत प्रतिष्ठित वैश्विक संस्थानों को परिसर स्थापित करने हेतु आकर्षित कर सके। जब तक कि उन्हें समान अवसर और सुविधाओं का विश्वास नहीं दिलाया जाएगा, तब तक प्रतिष्ठित विदेशी विश्वविद्यालय आकर्षित नहीं होंगे। अतीत में ऐसी कई पहलें हुई हैं, जिनके वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं। हालांकि, हाल के दिनों में भारत की आर्थिक स्थिति वैश्विक स्तर पर जबर्दस्त तरीके से सुधरी है। इस आधार पर विदेशी संस्थान भारत को, दो

दशक पहले की तुलना में, अपने लिए ज्यादा अनुकूल मान सकते हैं। अकादमिक व्यवस्था, भूस्वामित्व, कराधान और शिक्षकों की भर्ती से संबंधित नियमन आदि उनकी चिंता के सामान्य विषय हैं। इन पर आवश्यक कार्रवाई की जानी चाहिए। इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि विदेशी संस्थाएं भारत में अपने परिसरों की स्थापना सहयोग और ज्ञान-साझाकरण के लिए करें, न कि सिर्फ व्यावसायिक हितों के लिए। ये संस्थाएं केवल अभिजात और उच्च वर्ग के लिए ही सीमित न हों, बल्कि वंचित वर्गों के छात्रों का हित-संरक्षण करते हुए उन्हें भी समुचित अवसर प्रदान करें।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:20-01-23

खेलों में शोषण

संपादकीय

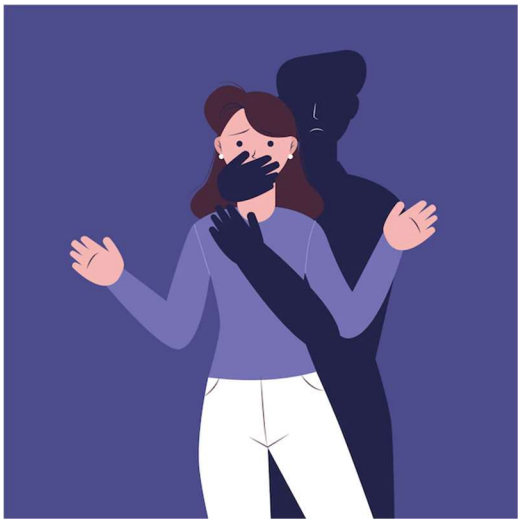

अनेक भारतीय पहलवानों की जो शिकायत सामने आई है, वह न सिर्फ दुखद, बल्कि चिंताजनक भी है। जंतर-मंतर पर बैठे भारतीय पहलवानों पर देश ही नहीं, दुनिया के अन्य देशों के लोगों की भी नजर गई होगी। क्या भारतीय कुश्ती में यौन शोषण या पहलवानों के साथ दुर्व्यवहार की शिकायत पर तत्काल कार्रवाई नहीं होनी चाहिए थी? खेल मंत्रालय ने जवाब देने के लिए तीन दिन का समय दे दिया, शायद आरोपितों को जवाब देने के लिए कम समय मिलना चाहिए था। विश्व मंचों पर भारत का नाम रोशन करने वाले पहलवानों की ओर से अगर शिकायतें आ रही हैं, तो हमारे खेल प्रबंधकों के कान खड़े हो जाने चाहिए। पदक के मामले में कुश्ती भारत के सफलतम खेलों में शुमार है और उसमें भी हरियाणा की पहलवानों ने जिस तरह यौन शोषण का आरोप लगाया है, उसे हल्के में नहीं लेना चाहिए। ऐसा नहीं है कि खेल अधिकारियों के पास ऐसी शिकायत पहले नहीं पहुंची होगी, पर जब तक विवाद सड़क पर न आ जाए, ज्यादातर अधिकारी मुंह फेरे घूमते रहते हैं, लेकिन अब मुंह छिपाने से काम नहीं चलने वाला।

भारतीय कुश्ती महासंघ के अध्यक्ष बृजभूषण शरण सिंह ने तमाम आरोपों से इनकार किया है, तो आश्चर्य नहीं। उनकी ओर से आने वाले लिखित जवाब के बाद बाकायदे विस्तृत जांच होनी चाहिए। ऐसा न हो कि शिकायतें एक-दो लोगों के कानों तक पहुंचकर रफा-दफा हो जाएं। विनेश फोगाट, साक्षी मलिक, बजरंग पुनिया जैसे पदकवीर अगर साथी पहलवानों के साथ मिलकर न्याय मांग रहे हैं, तो लीपा-पोती तो कतई नहीं होनी चाहिए। यह सही है कि भारतीय कुश्ती महासंघ में ग्यारह साल से एक ही अध्यक्ष हैं और उनके समय भारत ने कुश्ती में अनेक पदक जीते भी हैं, लेकिन अध्यक्ष से जुड़े विवाद भी किसी से छिपे नहीं हैं। अगर इनके खिलाफ साजिश हो रही है, तो इन्हें भी आगे आकर पर्दाफाश करना चाहिए। खेल संघों की राजनीति किसी से छिपी नहीं है, सत्ताधारी दल कोई भी हो, वह खेल संघों पर काबिज हो जाना

चाहता है। यह बार-बार दोहराया गया है, यह परिपाटी व्यावहारिक रूप से भी गलत है। खेलों और खिलाड़ियों की संवेदना को समझने वाले व्यक्ति के हाथों में ही खेल संघों की कमान होनी चाहिए। जंतर-मंतर पर दुख बयान करते हुए किसी शोषित ओलंपियन पहलवान की आंखों से आंसू निकल आएं, तो समझ लीजिए, खेल प्रशासन में ममत्व व निष्ठा कितनी कम हो गई है?

यह मुद्दा कतई राजनीति का नहीं है। जंतर-मंतर पर खिलाड़ियों से एकजुटता दर्शाने पहुंची वामपंथी नेता से अगर दोटूक आग्रह किया गया कि मामले को राजनीतिक न बनाइए, तो तारीफ होनी चाहिए। लगे हाथ खिलाड़ियों को यह आग्रह नहीं करना चाहिए कि खांटी नेताओं को खेल महासंघों पर काबिज होने से बचना चाहिए? क्या खूब पदक जीतने वाले देशों में भी ज्यादातर खेल संघों पर राजनेताओं का कब्जा है? खैर, फिलहाल सवाल शोषण संबंधी शिकायत का है और पहलवानों ने आर-पार की लड़ाई ठान रखी है। इस मामले का न्यायपूर्ण पटाक्षेप जितनी जल्दी हो, उतना अच्छा है। कोई भी खेल बुनियादी रूप से श्रेष्ठ आचरण की आशा रखता है। खिलाड़ी अपने परिवार, समाज और देश के लिए राजदूत सरीखे होते हैं। उनके मन में अपनी खेल संस्थाओं-संघों के लिए गौरव का भाव होना चाहिए। शायद अब इस दिशा में सबकी उम्मीद सरकार और शिकायत झेल रहे खेल संघ पहल करने की जरूरत महसूस करेंगे।

Date:20-01-23

युवा देश म नेता बनने के लिए कितनी तैयार हैं नै पीढ़ी

विजय विद्रोही, (वरिष्ठ टीवी पत्रकार)

उदयपुर में कांग्रेस के चिंतन शिविर में संगठन में आधे पद युवाओं को देने पर सहमति बनी थी। अब भारतीय जनता पार्टी ने दिल्ली में हुई राष्ट्रीय कार्यकारिणी में गुजरात मॉडल की तर्ज पर युवाओं को चुनावों में ज्यादा टिकट देना तय किया है। आखिर जिस देश में औसत उम्र 28 साल हो और 65 फीसद आबादी चालीस से कम उम्र की हो, उस देश में राजनीति भी युवा हाथों में क्यों नहीं होनी चाहिए?

आज सभी राजनीतिक दलों को युवा नेताओं और युवा मतदाताओं की जरूरत है। भाजपा की बैठक में तो प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 18 से 24 साल के युवाओं को अपना सुशासन और पूर्व की सरकारों का कुशासन समझाने के लिए विशेष अभियान चलाने तक की सलाह दी। यह अपने आप में दिखाता है कि युवा मतदाता कितनी अहमियत रखता है। 18 साल के मतदाता को आपने प्रभावित कर लिया, तो वह आगे कई चुनावों तक साथ रह सकता है। माना जाता है, अगर पार्टी को युवा रखना है, तो युवाओं को आगे लाना होगा।

हालांकि, यहां एक पेच है। युवा वर्ग को चुनाव मैदान में उतारा तो जाने लगा है, लेकिन जब पद देने की बारी आती है, तो आलाकमान सियासी मोतियाबिंद का शिकार हो जाता है। पहली बार चुनाव जीतने वालों को सत्ता में कोई बड़ी जिम्मेदारी नहीं सौंपी जाएगी, ऐसा कह दिया जाता है, पर क्या इस नजरिये में बदलाव की जरूरत महसूस की जा रही है? राजनीति का तरीका बदल रहा है। सोशल मीडिया पर भी चुनाव लड़ा जाने लगा है, वहां जाहिर है, युवा वर्ग का हस्तक्षेप ज्यादा है।

भाजपा ने तो अघोषित रूप से 75 साल की उम्र में रिटायर करने की पहल की है, लेकिन कांग्रेस में ऐसा नियम नहीं है। कांग्रेस अध्यक्ष पद की कमान 80 साल के मल्लिकार्जुन खड़गे को सौंपी गई है। पंजाब में अकाली दल की कमान 96 साल के प्रकाश सिंह बादल के पास है। कर्नाटक में जेडीएस की कमान पूर्व प्रधानमंत्री देवेगौड़ा के पास है, जो 90 बसंत देख चुके हैं। हरियाणा में 88 साल के ओम प्रकाश चौटाला इंडियन नेशनल लोकदल की कमान संभाले हुए हैं। इसी तरह एनसीपी के शरद पवार 82 साल, नेशनल कांफ्रेंस के फारूक अब्दुल्ला 85 साल के हैं। नवीन पटनायक 77 साल और लालू यादव 75 पार कर चुके हैं, पर अपने-अपने दल (बीजद और राजद) के मुखिया बने हुए हैं, तो क्या कहा जाए? देश में कुछ बदल नहीं रहा है?

हां, कुछ तो बदल रहा है। सात राज्यों में मुख्यमंत्री पचास साल या उससे कम उम्र के हैं। आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री जगन मोहन रेड्डी और उत्तर प्रदेश के योगी आदित्यनाथ पचास साल के हैं। गोवा के प्रमोद सावंत 49 साल, तो उत्तराखंड के पुष्कर धामी और झारखंड के हेमंत सोरेन 47-47 साल के हैं। मेघालय के संगमा 45 के हैं, तो अरुणाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री पेमा खांडू 43 के हैं। यहां एक उदाहरण अरविंद केजरीवाल का है, जो अलग पार्टी बनाकर 47 की उम्र में मुख्यमंत्री बन गए। दूसरा उदाहरण सचिन पायलट का है, जो 40 की उम्र में राजस्थान में कांग्रेस को सत्ता में लाने के बावजूद मुख्यमंत्री बनने का इंतजार करते रह जाते हैं। ज्योतिरादित्य सिंधिया निराशा में पार्टी छोड़ देते हैं।

सोनिया गांधी ने एक बार युवा नेताओं को नसीहत दी थी कि उन्हें संयम रखना चाहिए। अशोक गहलोत नसीहत देते हैं कि युवा वर्ग को सियासी रगड़ाई के लिए तैयार रहना चाहिए। उधर, युवा नेता गालिब का शेर गुनगुनाने को मजबूर हो जाते हैं- हम ने माना कि तगाफुल न करोगे लेकिन / खाक हो जाएंगे हम तुम को खबर होते तक।

तो क्या किया जाए? अमेरिका में नियम है कि राष्ट्रपति ज्यादा से ज्यादा दो बार बना जा सकता है। युवा नेता शायद यही चाहते हैं, पर बुजुर्ग नेता अक्सर शी जिनपिंग और पुतिन की ओर देखते हैं, जिन्होंने आजीवन सत्ता का ठेका हासिल कर लिया है। कुछ का कहना है कि सोच युवा होनी चाहिए, उम्र में क्या रखा है। कुल मिलाकर, युवा देश के युवा नेताओं को अपने लिए युवा वोट बैंक तैयार करना है, तो अपनी सोच को बदलना होगा, पर फिर वही सवाल, क्या आलाकमान इसकी इजाजत देगा?